पूरी बेंच

माननीय न्यायधीश श्री एस.एस. संधावालिया, माननीय न्यायमूर्ति श्री बी.एस. ढिल्लों और माननीय न्यायमूर्ति श्री जी.सी. मितल के सामने,

फ्लोराबेल स्किनर और अन्य,-याचिकाकर्ता, बनाम
जय बजरंग कला मंदिर राम लीला मंडल,-प्रतिवादी।
1978 का नागरिक संशोधन संख्या 58।
5 नवम्बर 1979.

अनुबंध अधिनियम (IX ऑफ 1872) - धारा 2 (ए) और 5 - सिविल प्रक्रिया संहिता (V ऑफ 1908) – ऑर्डर 23 नियम 3 - साक्ष्य अधिनियम (I ऑफ 1872) - धारा 20 - एक मुकदमे में एक पक्ष द्वारा प्रस्ताव विपरीत पक्ष के बयान से बंधे रहें - विपरीत पक्ष प्रस्ताव स्वीकार कर रहा है और बयान देने के लिए सहमत है - ऐसा प्रस्ताव - क्या कोई समझौता कानून में लागू करने योग्य है - प्रस्ताव देने वाला पक्ष - क्या बयान दर्ज होने से पहले इसे वापस ले सकता है - समझौता-क्या आदेश 23 नियम 3 के अर्थ के भीतर मुकदमे का समायोजन है-ऐसा समझौता-क्या साक्ष्य अधिनियम की धारा 20 के अंतर्गत आता है।

अभिनिर्धारित किया गया, (माननीय न्यायधीश श्री एस.एस. संधावालिया, और माननीय न्यायमूर्ति श्री जी.सी.मित्तल के अनुसार) कि एक पक्ष द्वारा विपरीत पक्ष के बयान से बंधा हुआ एक प्रस्ताव अनुबंध के कानून के तहत एक समझौता है, लेकिन ऐसा कोई समझौता नहीं होगा। संहिता के ऑर्डर 26 नियम 6 क्योंकि अकेले इस समझौते से मुकदमे का पूर्ण या आंशिक रूप से कोई समायोजन नहीं होता है। ऑर्डर 23 नियम 3 में समझौते या पार्टियों की परिकल्पना की गई है, जिसके पढ़ने से मुकदमे में विवाद का फैसला पार्टियों के बीच पूर्ण या आंशिक रूप से किया जा सकता है। लेकिन इस तरह का समझौता अकेले या आंशिक रूप से मुकदमे में विवाद का फैसला नहीं कर सकता है क्योंकि समझौते के अनुसरण में एक पक्ष को एक बयान देना होगा, जिस बयान पर अदालत द्वारा विचार किया जाएगा ताकि यह देखा जा सके कि मुकदमे का फैसला पूरी तरह से या आंशिक रूप से उस कथन के आधार पर किया जा सकता है या नहीं। इसलिए, संहिता का ऑर्डर 23 नियम 3 ऐसे मामले में लागू नहीं होगा। (पैरा 16)

अभिनिर्धारित किया गया, (माननीय न्यायधीश श्री एस.एस. संधावालिया और माननीय न्यायमूर्ति श्री जी.सी. मित्तल के अनुसार) कि मध्यस्थता अधिनियम भी ऐसे समझौते पर लागू नहीं होगा क्योंकि यह किसी मुकदमे में विवाद को मध्यस्थ के पास भेजने का समझौता नहीं है। मध्यस्थ को जो निर्णय लेना है वह उसके समक्ष प्रस्तुत सामग्री पर

विचार करके पक्षों के विवाद को समाप्त करना है, ताकि विवाद पर अंतिम निर्णय दिया जा सके। इसके अलावा, मध्यस्थता अधिनियम के तहत, एक वैध मध्यस्थता समझौते पर पहुंचने के बाद, मध्यस्थ मध्यस्थता अधिनियम के अनुसार कार्यवाही करता है जिसे अदालत में दायर करना होता है और जिसके फैसले पर पार्टियों द्वारा आपत्तियां दायर की जा सकती हैं। निर्णय को न्यायालय का नियम बना दिया जाता है या निर्णय को रद्द कर दिया जाता है, संशोधित कर दिया जाता है या कुछ मामलों के लिए फिर से मध्यस्थ को भेज दिया जाता है। यह फिर से, ऐसे समझौते पर लागू नहीं होता है और इसलिए, मध्यस्थता अधिनियम लागू नहीं होगा। (पैरा 17)

अभिनिर्धारित किया गया, (प्रति माननीय न्यायधीश श्री एस.एस. संधवालिया, और माननीय न्यायमूर्ति श्री जी.सी. मित्तल,) कि साक्ष्य अधिनियम 1872 की धारा 20 को चित्रण के साथ पढ़ने से पता चलेगा कि इसके तहत परिकल्पित कथन निर्णय के लिए कुछ मामलों पर प्रासंगिक है। मुकदमे को मुकदमे में स्वीकारोक्ति के रूप में माना जाता है और अदालत मुकदमे का अंतिम निर्णय लेने के लिए रिकॉर्ड पर अन्य सामग्री के साथ स्वीकारोक्ति लेने की हकदार होगी, लेकिन पार्टियों के समझौते के अनुसरण में व्यक्ति द्वारा दिया गया बयान है। न तो पार्टियों के समझौते के अनुसरण में और न ही यह मुकदमे के अंतिम निर्णय के बराबर है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 20 में मुकदमेबाजी के पक्षकारों के बीच किसी समझौते की परिकल्पना नहीं की गई है, लेकिन कोई भी पक्ष अपने नामांकित व्यक्ति (जिसे कभी-कभी रेफरी भी कहा जाता है) के बयान से बंधे होने के लिए बयान दे सकता है और इस तरह का बयान दे सकता है। नामांकित व्यक्ति को उस पार्टी की स्वीकृति माना जाता है जिससे वह पार्टी बाद में मुकर नहीं सकती। धारा 20 के आधार पर नामांकित व्यक्ति के बयान को पार्टियों की स्वीकृति माना जाएगा, न कि विपरीत पार्टी की, और न ही यह मुकदमे के निर्णय के बराबर होगा। जबकि वह पक्ष, जिसके कहने पर नामांकित व्यक्ति ने बयान दिया है, नामांकित व्यक्ति के बयान से बंधा होगा और उससे मुकर नहीं सकता, यह विपरीत पक्ष पर बाध्यकारी नहीं होगा और विपरीत पक्ष यह दिखाने का हकदार होगा कि नामित व्यक्ति का बयान नामांकित व्यक्ति पूरी तरह से गलत है। इसलिए, साक्ष्य अधिनियम की धारा 20 के तहत बयान न तो पार्टियों के समझौते पर दिया गया है और न ही मुकदमे के समायोजन के बराबर है। इस प्रकार, साक्ष्य अधिनियम की धारा 20 की यह निर्धारित करने के लिए कोई प्रासंगिकता नहीं है कि क्या कोई पक्ष जो विपरीत पक्ष के किसी भी बयान से बाध्य होने की पेशकश करता है, वह ऐसे प्रस्ताव से पीछे नहीं हट सकता है यदि दूसरा पक्ष ऐसा बयान देने के लिए सहमत हो गया है। (पैरा 18)

अभिनिर्धारित किया गया, (प्रति माननीय न्यायधीश श्री एस.एस. संधावालिया, और माननीय न्यायमूर्ति श्री जी.सी. मितल) कि एक व्यक्ति द्वारा किया गया प्रस्ताव, जिसे उस व्यक्ति द्वारा स्वीकार किया जाता है, जिसे ऐसा प्रस्ताव दिया गया है, अनुबंध के कानून

के तहत एक समझौता बन जाता है और कोई भी पक्ष इससे मुकर नहीं सकता है। हालाँकि, एक अपवाद है कि यदि, किसी दिए गए मामले में, न्यायालय की संतुष्टि के लिए पर्याप्त कारण दिखाया गया है और न्यायालय संतुष्ट है, तो वह किसी पक्ष को इससे मुकरने की अनुमति दे सकता है। (पैरा 19 और 25)

मोनी राम बनाम हरि चंद और अन्य, 1955, पी.एल.आर. 327,

ज्ञान चंद शर्मा बनाम बंसी लाल एवं अन्य, ए.आई.आर. 1961 पंजाब 31,

जोगिंदर सिंह एवं अन्य बनाम बहादुर सिंह एवं अन्य 1978(2) रेंट लॉ रिपोर्टर 708।

ठाकुर सिंह एवं अन्य बनाम इंदर सिंह, ए.आई.आर. 1976, प. एवं हाई. 287 - खारिज कर दिया गया।

अभिनिर्धारित किया गया, (माननीय न्यायमूर्ति श्री बी.एस. ढिल्लों के अनुसार) कि पहले सिद्धांत पर ऐसा प्रतीत होता है कि जहां किसी व्यक्ति के बयान का पालन करने के लिए पार्टियों के बीच एक समझौता किया जाता है, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि यह (न्यायालय द्वारा लागू करने योग्य एक वैध समझौता नहीं है) लेकिन जब इससे मुकरने के लिए पर्याप्त कारण हों तो अदालत किसी एक पक्ष को समझौते से मुकरने की अनुमति दे सकती है। रेफरी की नियुक्ति के लिए पार्टियों के समझौते को ऑर्डर 23 नियम 3 के अर्थ में मुकदमे का समायोजन नहीं कहा जा सकता है। सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 के अनुसार, लेकिन प्रस्ताव देने वाला पक्ष न्यायालय की अनुमति के बिना इससे पीछे नहीं हट सकता, यदि प्रस्ताव को वापस लेने की अनुमति देने के लिए न्यायालय की संतुष्टि के लिए पर्याप्त कारण दिखाया गया हो। यदि के आधार पर एक समझौता जो बाध्यकारी प्रकृति का है, सिवाय इसके कि जब रेफरी अदालत की अनुमति से एक बयान देता है, तो उससे मुकरने के लिए पर्याप्त कारण दिए जाने पर वह बयान मुकदमे के निर्णय का आधार बन जाता है। हालाँकि, यह समझौते की सामग्री और आकार पर निर्भर करेगा कि पार्टियों के बीच समझौते के अनुसार किसी मामले का फैसला करने की अदालत की शक्ति का असली आधार पार्टियों का समझौता है या साक्ष्य अधिनियम के धारा 20 में निहित सिद्धांत है। किसी दिए गए मामले में, पक्षों के बीच समझौता मामले को तय करने की अदालत की शक्ति का सच्चा आधार हो सकता है और पक्षों के बीच समझौता साक्ष्य अधिनियम की धारा 20 के तहत स्वीकार्य साक्ष्य का आधार बन सकता है। जो भी मामला हो, वह मुकदमे के निर्णय के क्षेत्र से संबंधित हो, लेकिन जहां तक किसी व्यक्ति के बयान का पालन करने के लिए पक्षों के बीच किए गए समझौते का संबंध है, तो उक्त समझौता तब पूरा हो जाता है जब एक पक्ष और उसी द्वारा प्रस्ताव दिया जाता है। दूसरे द्वारा स्वीकार किया जाता है। एक व्यक्ति जिसने स्वयं दूसरे पक्ष या किसी तीसरे व्यक्ति के बयान का पालन करने की पेशकश की है, उसे बाद में अपनी सुविधा के अनुसार

उक्त समझौते से पीछे हटने की अनुमति नहीं दी जा सकती है, सिवाय इसके कि, अगर अदालत को पर्याप्त कारण बताए जाएं। और उस स्थिति में न्यायालय उसे समझौते के प्रस्ताव से हटने की अनुमति दे सकता है। यह सिद्धांत अच्छी सार्वजनिक नीति पर आधारित है। (पैरा 4, 7 और 8)

मामले में शामिल कानून के एक महत्वपूर्ण प्रश्न के निर्णय के लिए 14 सितंबर, 1978 को माननीय श्री न्यायमूर्ति एस.पी. गोयल द्वारा मामले को एक बड़ी पीठ के पास भेजा गया। माननीय मुख्य न्यायाधीश श्री एस.एस. संधावालिया और माननीय श्री न्यायमूर्ति आई.एस. तिवाना की खंडपीठ ने 27 सितंबर, 1979 को मामले को फिर से एक बड़ी पीठ के पास भेज दिया। बड़ी पीठ में माननीय शामिल थे। मुख्य न्यायाधीश एस.एस. संधावालिया, माननीय श्री न्यायमूर्ति बी.एस. ढिल्लों और माननीय श्री न्यायमूर्ति जी.सी. मित्तल ने अंततः 5 नवंबर, 1979 को गुण-दोष के आधार पर मामले का फैसला किया।

श्री के.सी. गुप्ता, उप न्यायाधीश प्रथम श्रेणी, हांसी के आदेश, दिनांक 7 अक्टूबर, 1977 के पुनरीक्षण के लिए धारा 115 सी.पी.सी. के तहत याचिका, जिसमें कहा गया था कि वादी ने अदालत में प्रतिवादी नंबर 1 का बयान दर्ज करने से पहले प्रस्ताव वापस ले लिया था, इसलिए वादी को अधिकार है कि मुकदमे का फैसला गुण-दोष के आधार पर कराया जाए और यह स्पष्ट किया जाए कि मुकदमा जारी रहेगा।

याचिकाकर्ता के वकील जी सी गर्ग।

प्रतिवादियों की ओर से एच. एल. सरीन, वरिष्ठ अधिवक्ता, एम. एल. सरीन, अधिवक्ता, और आर. एल. सरीन, अधिवक्ता।

निर्णय

माननीय न्यायमूर्ती श्री बी.एस. ढिल्लों,

(1) इस मामले को जन्म देने वाले संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि विवादित भूमि वादी द्वारा वार्षिक रुपए 500 किराये पर रामलीला आयोजित करने के लिए पट्टे पर ली गई थी। यह तर्क दिया गया कि प्रतिवादी और उनके कारिंदे वादी को मुकदमे की भूमि से जबरन बेदखल करना चाहते थे और इस प्रकार स्थायी निषेधाज्ञा जारी करके राहत मांगी गई थी। मुकदमे की सुनवाई के दौरान 22 सितंबर को वादी हांसी ने अपने वकील श्री आई.डी. हंस के साथ बयान दिया कि यदि प्रतिवादी नंबर 1 अदालत में बयान देता है कि रसीदें दिनांक 26 अक्टूबर 1974 और 9 अक्टूबर 1975 हैं। , उसके द्वारा जारी नहीं किए गए थे, वादी का मुकदमा खारिज किया जा सकता है और, अन्यथा, यह डिक्री

किया जा सकता है। प्रतिवादियों के वकील श्री डी.सी. शर्मा ने उसी तारीख को इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और मामले को प्रतिवादी नंबर 1 के बयान के लिए 24 सितंबर 1977 तक के लिए स्थगित कर दिया गया। उस तारीख को, प्रतिवादी नंबर 1 अपने बयान से पहले ही उपस्थित हो गई। दर्ज किया जाए, वादी ने प्रस्ताव वापस लेने के लिए एक आवेदन किया। हालाँकि, प्रतिवादी नंबर 1 का बयान दर्ज किया गया था, लेकिन ट्रायल कोर्ट ने अंततः माना कि बयान की रिकॉर्डिंग से पहले प्रस्ताव वापस ले लिया गया था, वादी योग्यता के आधार पर मुकदमे का फैसला करने का हकदार था। नतीजतन, प्रतिवादी इस आदेश के खिलाफ पुनरीक्षण में आये।

(2) पुनरीक्षण याचिका 14 सितंबर 1978 को माननीय न्यायमूर्ति श्री एस. पी. गोयल, सीएन के समक्ष सुनवाई के लिए आई, जिन्होंने संदर्भ आदेश में संदर्भित इस न्यायालय द्वारा तय किए गए मामलों में संघर्ष को हल करने के लिए मामले को एक बड़ी पीठ के पास भेज दिया। इस मामले को 27 सितंबर, 1979 को एस.एस. संधावालिया, मुख्य न्यायाधीश और आई.एस. तिवाना, न्यायमूर्ति की एक डिवीजन बेंच के समक्ष सुनवाई के लिए सूचीबद्ध किया गया था, जब उनके आधिपत्य ने इस मामले को एक बड़ी बेंच के पास भेज दिया, क्योंकि यह तर्क दिया गया था कि एक डिवीजन बेंच ठाकुर सिंह और अन्य बनाम इंदर सिंह[1], में, सही कानून नहीं बनाया गया। इस तरह यह मामला फुल बेंच के सामने रखा गया है।

(3) जैसा कि मामले के तथ्यों से स्पष्ट होगा, कानून का महत्वपूर्ण प्रश्न जिसे इस पुनरीक्षण याचिका में निर्धारण की आवश्यकता है, क्या कोई पक्ष जो किसी भी विपरीत पक्ष के बयान से बाध्य होने की पेशकश करता है, वह इस तरह के प्रस्ताव से पीछे नहीं हट सकता है दूसरे पक्ष के ऐसा बयान देने के लिए सहमत होने के बाद जब तक कि प्रस्ताव वापस लेने की अनुमति देने के लिए न्यायालय की संतुष्टि के लिए पर्याप्त कारण न दिखाया गया हो।

(4) पहले सिद्धांत पर, ऐसा प्रतीत होता है कि जहां किसी व्यक्ति के बयान का पालन करने के लिए पार्टियों के बीच एक समझौता किया जाता है, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि यह न्यायालय द्वारा लागू करने योग्य वैध समझौता नहीं है, सिवाय इसके कि जब विरोध करने के लिए पर्याप्त कारण हों इससे, ऐसी स्थिति में न्यायालय किसी एक पक्ष को समझौते से मुकरने की अनुमति दे सकता है।

(5) मामला रेस इंटीग्रा का नहीं है। 1926 में ही, राम भाई बनाम दुनी चंद[2] मामले में लाहौर उच्च न्यायालय के शादी लाई, मुख्य न्यायधीश ने माना था कि भारतीय शपथ

[1] ए आई आर 1976 पंजाब और हरियाणा 287

[2] ए आई आर 1926 लाहौर 240(1)

अधिनियम, 1873 की धारा 9, 10 और 11 में ऐसा कुछ भी नहीं है, जो किसी पार्टी को अनुमति देता हो जो अपने प्रतिद्वंद्वी द्वारा शपथ लेने के बाद अपने प्रस्ताव को स्वीकार करने के बाद उसे रद्द करने के लिए सहमत हो गया है, लेकिन यदि इसके लिए अच्छे आधार दिखाए गए हैं तो न्यायालय के पास वापसी की अनुमति देने का विवेकाधिकार है। अल्लाह रक्खा बनाम पुन्नुन[3], में भिड़े, न्यायमूर्ति द्वारा भी इसी तरह का दृष्टिकोण अपनाया गया था। मनोहर लाई बनाम ओंकार दास उर्फ ओंकार दास और अन्य[4], में इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने इस प्रकार निर्णय दिया: -

> "भारतीय शपथ अधिनियम में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जिसके तहत किसी पार्टी के खिलाफ मुकदमा केवल इसलिए तय किया जा सकता है क्योंकि उक्त पार्टी ने शपथ लेने से इनकार कर दिया है, जिसे उसने एक चरण में लेना स्वीकार कर लिया था। यह सच है कि शपथ लेने की पेशकश करने वाला व्यक्ति प्रस्ताव स्वीकार होने के बाद उसे वापस नहीं ले सकता, जब तक कि वह इसके लिए पर्याप्त कारण न बताए और अदालत उसे ऐसा करने की अनुमति न दे। हालाँकि, शपथ लेने के लिए स्वीकार करने वाला व्यक्ति शपथ लेने के लिए बाध्य नहीं है और मुकदमे को केवल इस कथन से समायोजित नहीं माना जा सकता है कि यदि उसने शपथ ली है, तो एक परिणाम होगा, और यदि उसने शपथ लेने से इनकार कर दिया है, अगला परिणाम आएगा।"

(6) कुन्दन बनाम करतारा[5], में, इस न्यायालय की एकल पीठ ने और मनोहर ला बनाम मामले (सुप्रा) में डिवीजन बेंच के फैसले के बाद माना कि किसी पक्ष को प्रस्ताव स्वीकार होने के बाद उसे वापस लेने की अनुमति नहीं दी जा सकती जब तक कि वह पर्याप्त कारण बताता है और न्यायालय उसे ऐसा करने की अनुमति देता है।

(7) हालाँकि, मोनी राम बनाम हरि चंद और अन्य[6] में, इस न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह विचार किया कि एक पक्ष एक रेफरी की नियुक्ति के लिए सहमत है और दिए गए बयान पर मामले का निर्णय लेने के लिए सहमति दे रहा है। रेफरी के बयान देने से पहले रेफरी को समझौते से मुकरने से नहीं रोका जाता है। विद्वान न्यायाधीश द्वारा यह देखा गया कि कोई भी समझौता तब तक पूरा नहीं हो सकता जब तक कि प्रस्ताव की शर्तों का पालन नहीं किया जाता है और यदि इससे पहले कोई पार्टियाँ विरोध करना चाहती थीं और समझौता नहीं करना चाहती है, जो कानूनन स्वीकार्य था। यह दृष्टिकोण सही प्रतीत नहीं होता। जिस क्षण एक पक्ष द्वारा कोई प्रस्ताव

---

[3] ए आई आर 1941 लाहौर 173

[4] 1959 पी अल आर 264

[5] 1965 पी अल आर 651

[6] 1955 पी अल आर 327

दिया जाता है और उसे दूसरे पक्ष द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है, समझौता पूरा हो जाता है। बयान देने या प्रस्ताव की शर्तों का अनुपालन करने का अगला भाग, प्रश्न है जो विवाद के गुण-दोष का निर्धारण करेगा। जहां तक समझौते की बात है तो यह तब पूरा होता है जब एक पक्ष द्वारा दिया गया प्रस्ताव दूसरे पक्ष द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है। इसलिए, मैं यह मानने को इच्छुक हूं कि मोनी राम के मामले (सुप्रा) में विद्वान न्यायाधीश द्वारा लिया गया दृष्टिकोण कानून में टिकाऊ नहीं है। ज्ञान चंद शर्मा बनाम बंसी लाई और अन्य[7], में इस सीबर्ट के बाद के एकल पीठ के फैसले में, विद्वान न्यायाधीश ने यह विचार किया कि एक रेफरी की नियुक्ति के लिए प्रस्ताव देने वाला पक्ष बयान से पहले जो वास्तव में रेफरी द्वारा बनाया गया है उसी से मुकर सकता है। मैंने इस फैसले को बहुत ध्यान से पढ़ा है और मैंने पाया है कि विद्वान न्यायाधीश द्वारा व्यक्त किया गया विचार कानून में टिकाऊ नहीं है। रेफरी की नियुक्ति के लिए पार्टियों के समझौते को सिविल प्रक्रिया संहिता के ऑर्डर 23, नियम 3 के अर्थ में मुकदमे का समायोजन नहीं कहा जा सकता है, लेकिन पक्ष यह प्रस्ताव दे रहा है कि वह इस कथन से बाध्य होगा। यदि प्रस्ताव वापस लेने की अनुमति देने के लिए न्यायालय की संतुष्टि के लिए पर्याप्त कारण दिखाया गया है तो दूसरा पक्ष न्यायालय की अनुमति के बिना इससे पीछे नहीं हट सकता। इस मामले में विद्वान न्यायाधीश का यह विचार कि इस तरह के समझौते को एक ही मुकदमे में लागू नहीं किया जा सकता है, तर्कसंगत नहीं है। यदि किसी समझौते के आधार पर, जो मेरी राय में, बाध्यकारी प्रकृति का है, निश्चित रूप से, जब न्यायालय की अनुमति से उससे मुकरने के लिए पर्याप्त कारण दिए जाते हैं, तो एक रेफरी एक बयान देता है, वह बयान आधार बन जाता है मुक़दमे के निर्णय के लिए। हालाँकि, यह समझौते की सामग्री और आकार पर निर्भर करेगा कि पार्टियों के बीच समझौते के अनुसार किसी मामले का फैसला करने की अदालत की शक्ति का असली आधार पार्टियों का समझौता है या साक्ष्य अधिनियम के धारा 20 में निहित सिद्धांत है। किसी दिए गए मामले में, पार्टियों के बीच समझौता और किसी अन्य मामले में पार्टियों के बीच समझौते के अनुसरण में दिया गया बयान साक्ष्य अधिनियम की धारा 20 के तहत स्वीकार्य साक्ष्य का आधार बन सकता है। जो भी मामला हो, वह मुकदमे के निर्णय के क्षेत्र से संबंधित है, लेकिन जहां तक किसी व्यक्ति के बयान का पालन करने के लिए पक्षों के बीच किए गए समझौते का संबंध है, तो एक पक्ष द्वारा प्रस्ताव दिए जाने के बाद उक्त समझौता पूरा हो जाता है। और वही बात दूसरे पक्ष द्वारा भी स्वीकार कर ली जाती है। एक व्यक्ति जिसने स्वयं दूसरे पक्ष या तीसरे व्यक्ति के बयान का पालन करने की पेशकश की है, उसे बाद में अपनी सुविधा के अनुसार उक्त समझौते से पीछे हटने की अनुमति नहीं दी जा सकती, सिवाय इसके कि, यदि पर्याप्त कारण न्यायालय को बताए

[7] ए आई आर 1961 पंजाब 31

गए हों, और उस स्थिति में न्यायालय उसे समझौते के प्रस्ताव से हटने की अनुमति दे सकता है। यह सिद्धांत अच्छी सार्वजनिक नीति पर आधारित है। इसलिए, मेरी राय है कि मोनी राम के मामले (सुप्रा) और ज्ञान चंद शर्मा (सुप्रा) में इस न्यायालय के दो एकल पीठ के फैसलों ने इस विषय पर कानून को सही ढंग से निर्धारित नहीं किया है।

(8) यह भी देखा जा सकता है कि साहेब राम बनाम राम नेवाज़ और अन्य[8] और मुंशी सिंह और अन्य बनाम इवाज़ सिंह और अन्य[9], में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ के फैसले, और एस. ई. मकुदेम मोहम्मद बनाम टी. वी. महोम्मद शेख अब्दुल और अन्य[10] में मद्रास उच्च न्यायालय का निर्णय, और इसी तरह उड़ीसा उच्च न्यायालय का निर्णय भी गुडला वेंकटरत्नम्मा और अन्य बनाम सिंधिरी सत्यनारायण और अन्य[11] में न्यायालय ने वही दृष्टिकोण अपनाया है जो मैं इस मामले में लेना चाहता हूं। साहेब राम के मामले (सुप्रा) में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के उनके आधिपत्य द्वारा की गई टिप्पणियाँ कि पक्षों के बीच समझौते के अनुसार मामले का निर्णय करने की न्यायालय की शक्ति का सही आधार न तो साक्ष्य अधिनियम की धारा 20 है, न ही सिविल प्रक्रिया संहिता के ऑर्डर 23, नियम 3, न ही मध्यस्थता अधिनियम बल्कि स्वयं पक्षों का समझौता अलग-अलग संदर्भ में किया गया है। कानून का उक्त कथन किसी मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर सही हो सकता है लेकिन ऐसे मामले भी हो सकते हैं जहां समझौते की शर्तों और प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, उस व्यक्ति द्वारा दिया गया बयान जिसके बयान पर पक्ष बाध्य होने के लिए सहमत हुए हों द्वारा, साक्ष्य का एक टुकड़ा हो सकता है जैसा कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 20 के तहत बताया गया है। वर्तमान मामले में मैं मामले की योग्यता के संबंध में अंतिम निर्णय के बारे में चिंतित नहीं हूं, लेकिन मैं कानून के एक सीमित प्रश्न को लेकर चिंतित हूं कि क्या कोई पक्ष जो टीसी की पेशकश करता है, वह किसी भी विरोधी पक्ष के बयान से बाध्य होगा या किसी तीसरे व्यक्ति के बयान के अनुसार, यदि दूसरे पक्ष ने इसे स्वीकार कर लिया है तो ऐसे प्रस्ताव से मुकरने की अनुमति दी जाती है, जब तक कि प्रस्ताव को वापस लेने की अनुमति देने के लिए ट्रायल कोर्ट की संतुष्टि के लिए पर्याप्त कारण न दिखाया गया हो। इस प्रकार यह देखा जाएगा कि पहले सिद्धांत पर और आधिकारिक घोषणाओं को ध्यान में रखते हुए, जिसका संदर्भ निर्णय के पहले भाग में पहले ही दिया जा चुका है, मैं यह मानने को इच्छुक हूं कि जहां एक पक्ष अपने कथन से बंधे रहने की पेशकश करता है। कोई भी विरोधी पक्ष या किसी तीसरे व्यक्ति के बयान से, वह ऐसे प्रस्ताव से पीछे नहीं हट सकता, यदि दूसरा पक्ष ऐसा बयान देने के लिए सहमत हो गया हो, जब तक कि प्रस्ताव को

---

[8] ए आई आर 1952 इलाहाबाद 882

[9] ए आई आर 1952 इलाहाबाद 890

[10] ए आई आर 1936 मद्रास 856

[11] ए आई आर 1957 उड़ीसा 226

अनुमति देने के लिए न्यायालय की संतुष्टि के लिए पर्याप्त वापस लेने का कारण ना दिखाया गया हो।

(9) फैसले से अलग होने से पहले, ठाकुर सिंह के मामले (सुप्रा) में इस न्यायालय के फैसले का संदर्भ दिया जा सकता है जिसका उल्लेख डिवीजन बेंच द्वारा किए गए संदर्भ आदेश में मिलता है। यह देखा जा सकता है कि इस निर्णय का उस प्रश्न पर कोई प्रभाव नहीं है जो इस मामले में तय किया जाना प्रस्तावित है।

(10) उस मामले में, इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने अभिनिर्धारित किया कि विशेष शपथ की पेशकश वाले समझौते को साक्ष्य अधिनियम की धारा 20 के प्रावधानों द्वारा कवर किया जा सकता है यदि बयान सख्ती से उसके अनुसार दिया गया हो। उक्त निर्णय कहीं भी इस सवाल की जांच नहीं करता है कि क्या कोई व्यक्ति, जो प्रस्ताव देता है, अधिकार के तौर पर, दूसरे पक्ष के बयान से बंधे होने के बाद प्रस्ताव को वापस ले सकता है, स्वीकार कर लिया गया है।

ऊपर दर्ज कारणों से, मैं पुनरीक्षण याचिका स्वीकार करता हूँ; ट्रायल जज के आदेश को रद्द करें और उन्हें कानून के अनुसार मुकदमे के निपटारे के लिए आगे बढ़ने का निर्देश दें। हालाँकि, लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

माननीय न्यायमूर्ति श्री गोकल चंद मितल,

(11) मैंने माननीय न्यायमूर्ति बी.एस. ढिल्लों द्वारा तैयार किए गए फैसले का पालन किया है। यद्यपि मैं इस बात से सहमत हूं कि ट्रायल जज का आदेश रद्द किए जाने योग्य है, लेकिन मेरे विद्वान भाई द्वारा दर्ज किए गए सभी कारणों से सहमत नहीं हूं; और इसलिए, मैं अपने स्वयं के कारणों को दर्ज करना चाहता हूं।

(12) इस मामले में विचार करने के लिए कानून का महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि यदि कोई पक्ष यह प्रस्ताव देता है कि वह मुकदमे की बर्खास्तगी या डिक्री के लिए विपरीत पक्ष के बयान से बाध्य होगा और यदि वह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाता है विरोधी पक्ष, क्या प्रस्ताव देने वाला पक्ष विपरीत पक्ष का बयान दर्ज होने से पहले उससे मुकर सकता है।

(13) प्रतिवादी-वादी ने याचिकाकर्ता-प्रतिवादियों के खिलाफ स्थायी निषेधाज्ञा के लिए इस आधार पर मुकदमा दायर किया कि वादी 500 रुपये के वार्षिक किराए पर विवाद में भूमि का पट्टेदार था और प्रतिवादी और उनके कारिंदे वादी को जबरन बेदखल करना चाहते थे। मुकदमे के लंबित रहने के दौरान, वादी के प्रबंध निदेशक ने अपने वकील के साथ एक बयान दिया कि यदि प्रतिवादी नंबर 1 अदालत में बयान देता है कि दिनांक 26

अक्टूबर, 1974 और 9 अक्टूबर, 1975 की रसीदें उसके द्वारा जारी नहीं की गई थीं। वादी का वाद खारिज किया जा सकता है, अन्यथा डिक्री किया जा सकता है। इस प्रस्ताव को प्रतिवादियों के वकील ने उसी दिन स्वीकार कर लिया और मामले को प्रतिवादी नंबर 1 का बयान दर्ज करने के लिए 24 सितंबर, 1977 तक के लिए स्थगित कर दिया गया। 24 सितंबर, 1977 को, प्रतिवादी नंबर 1 बयान देने के लिए उपस्थित हुआ, लेकिन बयान दर्ज होने से पहले, वादी ने प्रतिवादी नंबर 1 के बयान से बंधे होने के प्रस्ताव को वापस लेने के लिए अदालत में एक आवेदन किया। आवेदन पर निर्णय लेने से पहले, प्रतिवादी नंबर 1 का बयान दर्ज किया गया था, लेकिन अंततः 7 अक्टूबर, 1977 के आदेश के अनुसार, ट्रायल कोर्ट ने वादी के आवेदन को केवल इस आधार पर स्वीकार किया कि वादी ने प्रतिवादी नंबर 1 द्वारा बयान दिए जाने से पहले प्रस्ताव वापस ले लिया था और मुकदमे को गुण-दोष के आधार पर आगे बढ़ाने का आदेश दिया था। उपरोक्त निष्कर्ष पर पहुंचने पर कि इस तरह के प्रस्ताव को वास्तव में बयान देने से पहले वापस लिया जा सकता है, ट्रायल जज ने मोनी राम बनाम हरि चंद और अन्य, (6सुप्रा) में इस न्यायालय के एकल पीठ के फैसले का पालन किया। वर्तमान पुनरीक्षण में प्रतिवादी इस न्यायालय में आए और एस. सी. मिताल, न्यायमूर्ति ने अल्लाह रक्खा बनाम पुन्नुन, (3 सुप्रा) और साहेब राम बनाम राम नेवाज़ और अन्य (8 सुप्रा) में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के पूर्ण पीठ के फैसले के आधार पर पुनरीक्षण स्वीकार किया। जब पुनरीक्षण एस.पी. गोयल, न्यायमूर्ति के समक्ष अंतिम निपटान के लिए आया, तो उन्होंने इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों में विरोधाभास देखा और इसलिए, मामले को एक बड़ी पीठ द्वारा निर्णय लेने के लिए संदर्भित किया। जब मामला डिवीजन बेंच के सामने आया, तो मुख्य न्यायाधीश और आई.एस. तिवाना, न्यायमूर्ति ने ठाकुर सिंह और अन्य बनाम इंदर सिंह (1 सुप्रा) मामले में इस न्यायालय के डिवीजन बेंच के फैसले की शुद्धता पर संदेह किया, साहेब राम के मामले (सुप्रा) में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ के फैसले को ध्यान में रखते हुए, और इसलिए, मामले को और भी बड़ी पीठ द्वारा तय करने के लिए भेजा गया और इस तरह, मामला हमारे सामने रखा गया है।

14) अनुबंध के कानून के तहत, एक पक्ष द्वारा दूसरे पक्ष को दिया गया प्रस्ताव केवल एक प्रस्ताव ही रहता है और इसे दूसरे पक्ष द्वारा स्वीकार किए जाने से पहले किसी भी समय वापस लिया जा सकता है। लेकिन यह कानून का स्थापित सिद्धांत है कि एक बार प्रस्ताव स्वीकार कर लेने के बाद, एक समझौता अस्तित्व में आता है और प्रस्ताव देने वाला पक्ष प्रस्ताव से मुकर नहीं सकता है और इससे मुकरने के बावजूद, वह उस अनुबंध से बंधा रहेगा जो कि दूसरे पक्ष द्वारा प्रस्ताव की स्वीकृति के बाद अस्तित्व में आया है।

(15) वर्तमान मामले में जो प्रश्न उठता है वह यह है कि क्या वादी द्वारा किया गया प्रस्ताव और प्रतिवादियों द्वारा स्वीकार किया गया प्रस्ताव अनुबंध के कानून के तहत एक

समझौता होगा या इसके कुछ अलग अर्थ हो सकते हैं। इस तरह के समझौते पर विचार करने की अन्य संभावनाएं शपथ अधिनियम, 1873 के तहत हो सकती हैं, लेकिन वह अधिनियम 1969 में निरस्त कर दिया गया है और इसलिए, इस बिंदु पर अब विचार नहीं किया जा सकता है। हालाँकि, शपथ अधिनियम, 1873 के तहत भी, सहब राम के मामले (सुप्रा) और मुंशी सिंह और अन्य बनाम इवाज़ सिंह और अन्य, (9 सुप्रा) में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने इसे एक समझौते पर माना था। किसी व्यक्ति का बयान, चाहे शपथ पर हो या उसके बिना, कोई भी पक्ष उससे मुकर नहीं सकता। 1969-शपथ अधिनियम के तहत, जिसने 1873-अधिनियम को निरस्त कर दिया, पिछले अधिनियम की धारा 9 से 12 जैसे कोई संबंधित प्रावधान नहीं हैं और इसलिए, 1969-शपथ अधिनियम के तहत विचार करने का कोई मुद्दा नहीं उठता है।

(16) अन्य संभावनाएं ऐसे समझौते को ऑर्डर 23 नियम 3, सिविल प्रक्रिया संहिता, मध्यस्थता अधिनियम या साक्ष्य अधिनियम की धारा 20 के तहत मानने की हैं। पूरे मामले पर विचार करने के बाद, मुझे नहीं लगता कि ऐसा कोई समझौता सिविल प्रक्रिया संहिता के ऑर्डर 23 नियम 3 के अंतर्गत आएगा, क्योंकि अकेले समझौते से मुकदमे का पूर्ण या आंशिक रूप से कोई समायोजन नहीं होता है। ऑर्डर 23 नियम 3 में पार्टियों के समझौते की परिकल्पना की गई है, जिसके पढ़ने से मुकदमे में विवाद का फैसला पार्टियों के बीच, पूर्ण या आंशिक रूप से किया जा सकता है। लेकिन वर्तमान मामले में समझौता अकेले, पूरी तरह या आंशिक रूप से, मुकदमे में विवाद का फैसला नहीं कर सकता है, क्योंकि समझौते के अनुसरण में, प्रतिवादी नंबर 1 को एक बयान देना होगा, जिसके बयान पर ही न्यायालय द्वारा विचार किया जाएगा। देखें कि क्या उस कथन के आधार पर मुकदमे का निर्णय पूर्णतः या आंशिक रूप से किया जा सकता है। अत: सिविल प्रक्रिया संहिता का ऑर्डर 23, नियम 3 इस मामले में लागू नहीं होगा।

(17) यहां तक कि मध्यस्थता अधिनियम भी लागू नहीं होगा, क्योंकि मौजूदा समझौता मुकदमे में विवाद को मध्यस्थ के पास भेजने का समझौता नहीं है। मध्यस्थ को जो करना है वह पार्टियों के विवाद को सुनना है और उसके सामने प्रस्तुत सामग्री पर विचार करने के बाद विवाद पर अंतिम निर्णय देना है। इसके अलावा, मध्यस्थता अधिनियम के तहत, एक वैध मध्यस्थता समझौते पर पहुंचने के बाद, मध्यस्थ मध्यस्थता अधिनियम के अनुसार कार्यवाही करता है जिसे अदालत में दायर करना होता है और जिसके फैसले पर पार्टियों द्वारा आपत्तियां दायर की जा सकती हैं। निर्णय को न्यायालय का नियम बना दिया जाता है या निर्णय को रद्द कर दिया जाता है, संशोधित कर दिया जाता है या कुछ मामलों के लिए फिर से मध्यस्थ को भेज दिया जाता है। यह, फिर से, वर्तमान समझौते पर लागू नहीं है और इसलिए, मध्यस्थता अधिनियम लागू नहीं होगा।

(18) फिर हमारे पास साक्ष्य अधिनियम की धारा 20 रह जाती है, जिसे इसके चित्रण के साथ पुन: प्रस्तुत किया जाना चाहिए: -

> "20. पार्टी द्वारा स्पष्ट रूप से संदर्भित व्यक्तियों द्वारा प्रवेश वाद के लिए-----उन व्यक्तियों द्वारा दिए गए बयान, जिन्हें मुकदमे के एक पक्ष ने विवादग्रस्त मामले के संदर्भ में जानकारी के लिए स्पष्ट रूप से संदर्भित किया है, स्वीकारोक्ति हैं।

इल्लुसत्राटीऑनस

सवाल यह है कि क्या ए द्वारा बी को बेचा गया घोड़ा स्वस्थ है।

A, B से कहता है- "जाओ और C से पूछो, C को इसके बारे में सब पता है।" सी का कथन एक स्वीकारोक्ति है।"

उपरोक्त प्रावधान को उदाहरण के साथ पढ़ने से पता चलता है कि इसके तहत परिकल्पित बयान, जो मुकदमे के निर्णय के लिए कुछ मामलों पर प्रासंगिक है, को मुकदमे में एक स्वीकृति माना जाता है और न्यायालय स्वीकारोक्ति लेने का हकदार होगा। मुकदमे का अंतिम निर्णय लेने में रिकॉर्ड पर मौजूद अन्य सामग्री के साथ। लेकिन व्यक्ति द्वारा दिया गया बयान न तो पार्टियों के समझौते के अनुसरण में है और न ही यह मुकदमे के अंतिम निर्णय के बराबर है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 20 में मुकदमेबाजी के पक्षकारों के बीच किसी समझौते की परिकल्पना नहीं की गई है, लेकिन कोई भी पक्ष अपने नामांकित व्यक्ति (जिसे कभी-कभी रेफरी भी कहा जाता है) के बयान से बंधा हुआ बयान दे सकता है और ऐसा बयान दे सकता है। नामांकित व्यक्ति की नियुक्ति को पार्टी की स्वीकृति माना जाता है जिससे वह पार्टी बाद में मुकर नहीं सकती। लेकिन धारा 20 के आधार पर नामांकित व्यक्ति का बयान पक्ष की स्वीकृति माना जाएगा, न कि विरोधी पक्ष का, और न ही यह मुकदमे के निर्णय के समान होगा। जबकि वह पक्ष, जिसके कहने पर नामांकित व्यक्ति ने बयान दिया है, नामांकित व्यक्ति के बयान से बंधा होगा और उससे मुकर नहीं सकता, यह विपरीत पक्ष पर बाध्यकारी नहीं होगा और विपरीत पक्ष यह दिखाने का हकदार होगा कि बयान का नामांकित व्यक्ति यू पूरी तरह से गलत है। इसलिए, साक्ष्य अधिनियम की धारा 20 के तहत बयान न तो पार्टियों के समझौते पर दिया गया है और न ही मुकदमे के समायोजन के बराबर है। इस प्रकार, साक्ष्य अधिनियम की धारा 20 की भी उस बिंदु के निर्णय के उद्देश्य से कोई प्रासंगिकता नहीं है जिसका उत्तर देने के लिए हमें बुलाया गया है।

(19) अब हमारे पास अनुबंध अधिनियम रह गया है। जैसा कि पहले ही देखा जा चुका है, एक व्यक्ति द्वारा किया गया प्रस्ताव उस व्यक्ति द्वारा स्वीकार किए जाने पर जिसे ऐसा प्रस्ताव दिया गया है, अनुबंध के कानून के तहत एक समझौता बन जाता है और कोई भी पक्ष इससे मुकर नहीं सकता है। इस सिद्धांत पर, हम मानते हैं कि वादी द्वारा

दिया गया बयान, कि मुकदमे का निर्णय प्रतिवादी नंबर 1 द्वारा दिए गए बयान के आधार पर किया जाएगा, प्रतिवादियों द्वारा स्वीकार किए जाने पर, पार्टियों के बीच एक बाध्यकारी अनुबंध बन गया और कोई भी पक्ष ऐसा नहीं कर सका। अनुबंध पूरा होने के बाद किसी भी समय उससे छुटकारा पाएं। इसलिए, वादी, इस मामले के तथ्यों पर, प्रतिवादी नंबर 1 का बयान दर्ज होने से पहले भी प्रस्ताव वापस नहीं ले सका। हालाँकि, यह पूरी तरह से अलग होगा यदि प्रतिवादी नंबर 1 बयान देने से इनकार कर दे। चूंकि समझौता प्रतिवादी नंबर 1 के बयान का पालन करने के लिए है और यदि प्रतिवादी नंबर 1 बयान देने से इनकार करता है, तो अदालत के पास कानून के अनुसार मुकदमे को आगे बढ़ाने के अलावा कोई विकल्प नहीं होगा। उपरोक्त दृष्टिकोण को साहेब रवि के मामले (सुप्रा) और मुंशी सिंह और अन्य के मामले (सुप्रा) में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की दो पूर्ण पीठ के फैसलों से पूर्ण समर्थन मिलता है; और मैं उसमें दर्ज कारणों से पूरी तरह सहमत हूं।

(20) उपरोक्त दृष्टिकोण को राम भाई बनाम दुनी चंद[12], भिड़े, न्यायमूर्ति द्वारा इलाहाबाद राखा के मामले (सुप्रा) में मुख्य न्यायाधीश शादी लाई के फैसले से भी समर्थन मिलता है; मनोहर लाई बनाम ओंकार दास, उर्फ ओंकार दास और अन्य, (4 सुप्रा), गोसाईं और हरबंस सिंह, जेजे द्वारा, और कुंदन बनाम करतारा, (5 सुप्रा) ए.एन. ग्रोवर, जे द्वारा। उपरोक्त सभी निर्णय स्वीकृत हैं।

(21) मोनी राम बनाम हरि चंद और अन्य में, (6 सुप्रा), जे. एल. कपूर, न्यायमूर्ति द्वारा; ज्ञान चंद शर्मा बनाम बंसी लाई और अन्य[13], पी. सी. पंडित, न्यायमूर्ति द्वारा; और जोगिंदर सिंह और अन्य बनाम बहादुर सिंह और अन्य[14], एस. पी. गोयल, न्यायमूर्ति द्वारा, एक विपरीत दृष्टिकोण लिया गया है और इसलिए, उन्हें खारिज कर दिया गया है।

(22) यह मुझे ठाकुर सिंह के मामले (सुप्रा) में इस न्यायालय की डिवीजन बेंच के फैसले पर विचार करने के लिए लाता है। उपरोक्त मामले के तथ्यों को देखने के बाद, मेरी राय है कि उस मामले और वर्तमान मामले के तथ्य कुछ हद तक समान हैं। उसमें भी, जब मुकदमा विचाराधीन था, तब वादी की ओर से यह बयान दिया गया कि यदि ठाकुर सिंह प्रतिवादी गुरुद्वारे में शपथ ले कि वाद की भूमि वादी की नहीं है तथा उसने वादी का मुकदमा खारिज कर दिया है। वादी के पक्ष में इसका कोई समझौता नहीं किया। एक और बयान यह भी दिया गया कि यदि प्रतिवादी शपथ नहीं लेता है, तो वादी के मुकदमे पर फैसला सुनाया जा सकता है। प्रतिवादी ने वादी के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया

[12] ए आई आर 1926 लाहौर 240

[13] ए आई आर 1961 पंजाब 31

[14] 1978(2) आर अल आर 708

और इस बात पर सहमत हुआ कि मुकदमे का निर्णय वादी के प्रस्ताव के अनुसार किया जा सकता है। समझौते के अनुपालन में, प्रतिवादी ठाकुर सिंह ने गुरुद्वारे में शपथ ली और अपने पक्ष में बयान दिया। ठाकुर सिंह प्रतिवादी का बयान दर्ज होने के बाद, वादी के वकील ने बयान दिया कि ठाकुर सिंह प्रतिवादी ने शपथ ली थी और उनके बयान के आधार पर, वादी का मुकदमा खारिज कर दिया गया और अंततः, मुकदमा ट्रायल कोर्ट द्वारा खारिज कर दिया गया। वादी के वकील के बयान के साथ-साथ प्रतिवादी ठाकुर सिंह का बयान भी। वादी ने ठाकुर सिंह के बयान के आधार पर मुकदमे को खारिज करने के ट्रायल कोर्ट के फैसले के खिलाफ अपील दायर की, जिसे जिला न्यायाधीश ने अनुमति दे दी और मामले को गुण-दोष के आधार पर फिर से निर्णय के लिए ट्रायल कोर्ट में भेज दिया गया। जिला न्यायाधीश ने इस आधार पर अपील की अनुमति दी थी कि वादी के वकील के पास भारतीय शपथ अधिनियम, 1873 की धारा 9 के तहत ली गई शपथ के आधार पर मामले के निपटारे के लिए सहमति देने की कोई शक्ति नहीं थी, न ही सिविल प्रक्रिया संहिता, 1882 कि धारा 36 के तहत, उसे ऐसा कोई अधिकार देती है क्योंकि वादी द्वारा उसके पक्ष में निष्पादित वकालतनामे में उसे इस आशय की कोई विशेष शक्ति नहीं दी गई थी। फिर प्रतिवादी इस न्यायालय में दूसरी अपील लेकर आया। पैरा 5 का अंतिम भाग हमारे विचार के लिए है, जिसे यहां पुन: प्रस्तुत किया जा सकता है: -

> "संपूर्ण 1873 अधिनियम को 1969 अधिनियम की धारा 9 द्वारा निरस्त कर दिया गया है। जबकि नए अधिनियम में 1873 अधिनियम की अन्य धाराओं के अनुरूप प्रावधान किए गए हैं, पुराने अधिनियम की धारा 9 से 12 के अनुरूप कोई प्रावधान नहीं किए गए हैं। पुराने अधिनियम की धारा 9 से 12 को बाहर करने का एकमात्र प्रभाव यह है कि यदि किसी न्यायिक कार्यवाही में कोई भी पक्ष किसी विशेष शपथ से बंधे होने की पेशकश करता है और न्यायालय उस पर सहमति देने वाले दूसरे पक्ष को ऐसी शपथ दिलाना उचित समझता है और ऐसी शपथ दूसरे पक्ष द्वारा ली जाती है, ऐसी शपथ पर दिए गए साक्ष्य उन व्यक्तियों के खिलाफ दिए गए हैं जिन्होंने उपरोक्त के रूप में बाध्य होने की पेशकश की है, ऐसे बयान में बताए गए मामले का निर्णायक सबूत नहीं होगा। मौजूदा मामले में, यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि कोई विशेष शपथ निर्धारित नहीं की गई थी। वादी के वकील ने अपने बयान में कोई विशेष शपथ या शपथ का कोई विशेष रूप निर्धारित नहीं किया, बल्कि केवल प्रतिवादी-अपीलकर्ता को शपथ लेने और एक विशेष गुरुद्वारे में मुद्दे के दो महत्वपूर्ण बिंदुओं पर बयान देने की पेशकश की। उन्हें गुरुद्वारे या गुरु ग्रंथ साहिब या किसी अन्य विशेष तरीके से शपथ लेने की आवश्यकता नहीं थी। इन परिस्थितियों में, हमें ऐसा प्रतीत होता है कि वादी के वकील के बीच समझौता हो गया। अपने मुवक्किल और प्रतिवादी-अपीलकर्ता

की ओर से दो महत्वपूर्ण मुद्दों पर प्रतिवादी द्वारा कवर किया जाएगा यदि यह पाया जाता है कि यह उसके द्वारा प्रस्तावित शर्तों के अनुसार सख्ती से किया गया है।

उपरोक्त परिच्छेद को पढ़ने से पता चलता है कि ठाकुर सिंह के मामले (सुप्रा) का फैसला करने वाली पीठ इस विचार पर आगे बढ़ी कि 1969 के शपथ अधिनियम में 1873 अधिनियम की धारा 9 से 12 जैसे कोई संबंधित प्रावधान मौजूद नहीं थे और इसलिए, मामले में दिया गया बयान गलत था। इस तरह के बयान का अब कोई निर्णायक सबूत नहीं रह गया है। जो दृष्टिकोण मैंने पहले ही ऊपर ले लिया है, भले ही 1873 शपथ अधिनियम या तो किसी दिए गए मामले में लागू नहीं था या निरस्त कर दिया गया था या 1969 शपथ अधिनियम में उसकी धारा 9 से 12 जैसा कोई संबंधित प्रावधान नहीं था, तो ऐसे में स्थिति, किसी पार्टी के बयान का पालन करने के लिए पार्टियों की पेशकश और स्वीकृति एक अनुबंध के समान होगी और अनुबंध के आधार पर एक पार्टी द्वारा दिया गया बयान मुकदमे के निर्णय के लिए निर्णायक होगा, और इसलिए, यह यह माना जाता है कि डिवीजन बेंच ने विपरीत दृष्टिकोण अपनाने में गलती की थी।

(23) इस निष्कर्ष पर पहुंचने के बाद कि बयान निर्णायक सबूत नहीं होगा, ठाकुर सिंह के मामले में बेंच (सुप्रा) साक्ष्य अधिनियम की धारा 20 के आधार पर मामले की जांच करने के लिए आगे बढ़ी। कोई भी समझौता या समझौता कभी भी साक्ष्य अधिनियम की धारा 20 के दायरे में नहीं आ सकता है, जैसा कि मैंने पहले ही पिछले पैराग्राफ में स्पष्ट किया है और यहां फिर से चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह दोहराव होगा। साक्ष्य अधिनियम की धारा 20 के प्रावधानों को उदारतापूर्वक व्याख्या करते हुए कितना भी बढ़ाया जाए, पार्टियों के बीच हुआ समझौता कभी भी उन प्रावधानों के अंतर्गत नहीं आ सकता है। मामले के तथ्यों पर समझौता प्रतिवादी के बयान का पालन करने का एक अनुबंध था। धारा 20 की परिकल्पना यह है कि किसी पार्टी के नामांकित व्यक्ति द्वारा दिया गया बयान उस पार्टी की स्वीकृति के समान है और वह पार्टी स्वीकारोक्ति से पीछे नहीं हट सकती है और अदालत मुकदमे का फैसला करने में साक्ष्य के रूप में उस स्वीकृति पर विचार कर सकती है। जबकि साक्ष्य का वह टुकड़ा उस पक्ष पर स्वीकारोक्ति के रूप में बाध्यकारी होगा जिसके कहने पर बयान दिया गया था, यह विपरीत पक्ष के लिए यह दिखाने के लिए खुला होगा कि नामांकित व्यक्ति द्वारा दिया गया बयान पूरी तरह से गलत या त्रुटिपूर्ण था। हालाँकि, यदि विरोधी पक्ष भी स्वीकारोक्ति पर भरोसा करना चाहेगा, तो यह अलग बात हो सकती है।

(24) ऊपर दर्ज किए गए कारणों के लिए, ठाकुर सिंह के मामले (सुप्रा) से ऊपर पुन: प्रस्तुत किया गया मार्ग, कानून का सही बयान नहीं देता है और इसके द्वारा खारिज कर दिया जाता है।

(25) हालाँकि, एक अपवाद है कि यदि, किसी दिए गए मामले में, न्यायालय की संतुष्टि के लिए पर्याप्त कारण दिखाया गया है और न्यायालय संतुष्ट है, तो वह किसी पक्ष को इससे मुकरने की अनुमति दे सकता है।

(26) परिणाम में, यह माना जाता है कि प्रतिवादी संख्या 1 के बयान का पालन करने के लिए पार्टियों के बीच एक पूर्ण अनुबंध था और चूंकि वादी द्वारा उससे मुकरने के लिए पर्याप्त कारण की कोई दलील नहीं दी गई थी, सिवाय इसके कि वह मैं बस उसी से मुकरना चाहता था, हम मानते हैं कि मामले के तथ्यों के आधार पर ट्रायल कोर्ट ने वादी को अनुबंध से मुकरने की अनुमति देकर गलती की थी। तदनुसार, मुकदमे को आगे बढ़ाने के ट्रायल कोर्ट के आदेश को रद्द किया जाना चाहिए और प्रतिवादी नंबर 1 द्वारा दिए गए बयान को मुकदमे के निर्णय के लिए प्रभावी बनाया जाना चाहिए।

(27) ऊपर दर्ज किए गए कारणों से, पुनरीक्षण की अनुमति दी जाती है, ट्रायल कोर्ट के 7 अक्टूबर, 1977 के आदेश को रद्द कर दिया जाता है और मामले को ट्रायल कोर्ट में वापस भेज दिया जाता है ताकि वह दिए गए बयान के अनुसार मुकदमा तय कर सके। प्रतिवादी संख्या 1. चूंकि इस न्यायालय में प्राधिकार का टकराव था, इसलिए पार्टियों को अपनी लागत स्वयं वहन करने के लिए छोड़ दिया गया है।

माननीय मुख्य न्यायधीश श्री एस.एस. संधावालिया,

(28) मुझे अपने विद्वान भाइयों न्यायमूर्ति बी.एस. ढिल्लों और न्यायमूर्ति जी.सी. मितल, द्वारा दर्ज किए गए सुस्पष्ट निर्णयों को पढ़ने का सौभाग्य मिला है। मैं अपने विद्वान भाई जी. सी. मितल, न्यायमूर्ति से पूरी तरह सहमत हूँ।

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।

संतोष (उ.ई.ड.नंबर HR0672)

प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी

तोशाम (भिवानी), हरियाणा